किशोरावस्था की संवेगात्मक समस्यायें

दीप्ति खरे
असिस्टेंट प्रोफेसर, गृह विज्ञान विभाग
बिजली पासी राजकीय महाविद्यालय, लखनऊ–226012, उ0प्र0, भारत
khare.deepti00@gmail.com

प्राप्त तिथि–29.07.2015, स्वीकृत तिथि–17.10.2015

किशोरावस्था विकास की एक क्रान्तिक अवस्था है जिसमें किशोर न तो बालक होता है और न ही प्रौढ़। शाब्दिक तौर पर अंग्रेजी के 'ऐडोलसेन्ट' की उत्पत्ति लैटिन भाषा की 'ऐडोलस्केयर' से हुई है जिसका अर्थ है परिपक्वता की ओर बढ़ना। यह वह अवस्था है जो बालक को शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक दृष्टि से प्रौढ़ बनाती है। यह अवस्था अन्य अवस्थाओं से आनन्दमयी होने के कारण सुनहरी अवस्था के नाम से जानी जाती है। पियाजे इसे समस्याओं की अवस्था तो इरिक्सन इसे संघर्षों की अवस्था कहते हैं। किशोरावस्था चूँकि अस्थिरता एवं अपरिपक्वता की ओर संकेत करती है। किशोर स्वयं के बारे में अनिश्चित होता है। वह लगातार नयी स्थिति से समायोजन करना चाहता है। इस अवस्था में संवेगात्मक अस्थिरता अधिक मात्रा में होती है। हरलॉक(1960) ने लिखा है प्रारम्भिक किशोरावस्था आंधी की व तनाव की अवस्था है। इस अवस्था में किशोर पहले की अपेक्षा अधिक संवेगात्मकता का अनुभव करते हैं।" यह एक भाव प्रधान अवस्था है और अस्थिरता के दो प्रमुख कारण भी हैं– 1. इस अवस्था में तीव्र एवं विषम विकास, 2. इस अवस्था में ज्ञान एवं अनुभव का अभाव।

अब यदि संवेग क्या है इसे समझा जाये तो यह शब्द लैटिन भाषा के इमोवेयर से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है भड़क उठना या उदीप्त होना। यंग(1961) लिखते हैं कि संवेग सम्पूर्ण व्यक्ति का तीव्र उपद्रव है जिसकी उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है। इसमें व्यवहार चेतन अनुभव तथा अन्रावयव क्रियायें शामिल हैं। संवेग के भाव किसी को भी इतना प्रेरित कर देते हैं कि वह राष्ट्र, धर्म, जाति मानवता के लिये बड़े से बड़ा कार्य कर गुजरते हैं। संवेगों का जीवन में बड़ा महत्व है, यह व्यक्ति को आकस्मिक परिस्थितियों में सुरक्षा भी प्रदान करते हैं क्योंकि संवेगों की उपस्थिति में व्यक्ति की क्रियाशीलता अधिक बढ़ जाने से वह खतरनाक परिस्थितियों से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाता है। इन परिस्थितियों को दृष्टिगोचर करने से यह स्पष्ट है कि किशोरावस्था चूँकि स्वयं एक अस्थिर अवस्था है तो इस अवस्था में संवेग भी अस्थिर व अस्पष्ट रहते हैं। किशोरों के संवेगों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं–

1. स्वास्थ्य शारीरिक दुर्बलता या पुराने रोगों में किशोरों की संवेगात्मकता बढ़ जाती है, विशेष तौर पर क्रोध।
2. संवेगात्मकता का प्रभाव बुद्धि से है। अधिक बुद्धि वाले बच्चे अपने संवेगों की अभिव्यक्ति समाज द्वारा मान्य तरीकों से करना सीख जाते हैं।
3. किशोरों में किशोरियों की अपेक्षा भय कम होता है।
4. अधिक देखभाल करने वाले माता–पिता के बच्चे अधिक क्रोधी होते हैं एवं सख्त माता पिता के बच्चे दब्बू।
5. सामाजिक वातावरण भी संवेगों को प्रभावित करता है।
6. बड़े परिवारों में बच्चों का संवेगात्मक विकास जल्दी होता है।
7. जन्मक्रम भी संवेगात्मकता को प्रभावित करते हैं, प्रथम बालक में स्नेह के साथ दब्बूपन होता है।
8. बहिर्मुखी व्यक्तित्व के किशोरों में भय अधिक होता है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक समस्यायें– मुख्य तौर पर किशोरावस्था में दो प्रकार की संवेगात्मक समस्यायें आती हैं–

1. संवेगात्मक प्रभुत्व, 2. संवेगात्मक कुसमायोजन।

संवेगात्मक प्रभुत्व– संवेगात्मक प्रभुत्व का अर्थ है कि बालक संवेगों की अनुभूति करता है। उनमें से एक या कुछ संवेग व्यवहार को अधिक मात्रा में प्रभावित करते हैं। हरलॉक(1798) ने संवेगात्मक प्रभुत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "संवेगात्मक प्रभुत्व का अर्थ है कि व्यक्ति भी संवेग का अनुभव करता है। उनमें से एक या उसके व्यवहार को प्रभावशाली ढंग से प्रमाणित करते हैं। संवेगात्मक प्रभुत्व जन्म से ही नहीं पाया जाता है। बल्कि यह वातावरण के कारकों के प्रभाव से विकसित है।" एक बालक यदि ऐसे वातावरण में पल रहा है। जहाँ पर क्रोध, घृणा और ईर्ष्या का वातावरण रहता है। तो इस बालक में निश्चित रूप से इन संवेगों की प्रधानता होगी, उसमें सुखात्मक संवेग कम से कम होंगे। कभी–कभी यह देखा जाता है। जब बालक के उसके परिवार से सम्बन्ध अच्छे नहीं होते हैं तो उसमें ईर्ष्या के संवेग की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। संवेगात्मक प्रभुत्व बालक के व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। बालक का स्वभाव और मूड बहुत कुछ संवेगात्मक प्रभुत्व से प्रभावित होता है। जिन बालकों का समायोजन दुर्बल होता है, उनमें

कष्टदायक संवेग अधिक आवृत्ति और मात्रा में उत्पन्न होते हैं। यह उत्पन्न संवेग बालक की सम्पूर्ण व्यवहार अनुक्रियाओं को प्रभावित करता हैं। स्नेह, प्रेम, हर्ष, प्रसन्नता, जिज्ञासा आदि संवेग सुखदायक संवेग है तथा ईर्ष्या, भय, क्रोध, घृणा आदि संवेग दुखदायक संवेग है। अतः स्पष्ट है कि माता–पिता को चाहिए कि बालक में सुखमय संवेगों को बढ़ावा दें।

संवेगात्मक कुसमायोजन तथा संवेगात्मक संतुलन– संवेगात्मक कुसमायोजन का अर्थ है कि जब एक व्यक्ति अपने वातावरण की आवश्यकताओं के अनुसार समायोजन करने में असमर्थ या अयोग्य होता है तो इस प्रकार के समायोजन को संवेगात्मक कुसमायोजन कहते हैं। बालक किसी न किसी मनोवैज्ञानिक वातावरण में रहता है। इस वातावरण की आवश्यकताओं के अनुसार यदि बालक अपने संवेगों की अभिव्यक्ति करता है तब तो यह कहा जायेगा कि उसमें संवेगात्मक संतुलन है। संवेगात्मक असन्तुलन की दो स्थितियाँ हो सकती हैं– 1. उच्च संवेगात्मक, 2. निम्न संवेगात्मक।

संवेगात्मक असन्तुलन की उपर्युक्त दोनों ही स्थितियों में बालक की संवेगात्मक अभिव्यक्ति सामान्य न होकर आसामान्य होगी। बढ़ी हई संवेगात्मकता और घटी हुई संवेगात्मकता दोनों ही संवेगात्मकता कुसमायोजन के दो पक्ष है। यह दोनों ही पक्ष समान रूप से महत्वपूर्ण है। घटी या निम्न संवेगात्मकता का अर्थ है कि संवेगात्मक अनुभवों की तीव्रता और आवृति सामान्य से कम हो। उदाहरण के लिए यदि किसी बालक से किसी परिस्थिति विशेष में यह अपेक्षित हो कि वह परिस्थिति के अनुसार क्रोध व्यक्त करेगा। तो वह क्रोध व्यक्त करने के स्थान पर शान्त रहता है या आवश्यकता से कम क्रोध व्यक्त करता है तो वह उसकी निम्न या सामान्य से कम संवेगात्मकता है। बढ़ी हुई या अति संवेगात्मकता के लिए हारलॉक(1978) ने लिखा है कि "अति संवेगात्मकता" का अर्थ है संवेगात्मक अनुभव की सामान्य से अधिक आवृति और तीव्रता। अति संवेगात्मक में हमेशा स्नायुविक तनाव होता है। इन स्नायुविक तनाव का प्रकाशन अलग–अलग बच्चों में भिन्न–भिन्न ढंग से होता है। कुछ बच्चे इस तनाव के कारण अंगूठा चूस सकते हैं। कुछ बच्चे अधिक नाखून काटने का व्यवहार अपना सकते हैं। सिर खुजलाने, उच्चस्तर में हंसना या फूट–फूट कर रो सकते हैं। जब संवेगात्मक तनाव अधिक मात्रा में होता है। तो भाषा सम्बन्धी विकार जैसे तुतलाना या हकलाना जैसी अभिव्यक्ति भी हो सकती है।

उच्च संवेगात्मकता के प्रभाव– उच्च संवेगात्मकता के कुछ प्रमुख प्रभाव निम्न प्रकार से है–

1. अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि बालकों का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अति संवेगात्मकता से है। अति संवेगात्मकता की स्थिति में शरीर के आन्तरिक अंगों पर स्थाई तथा अस्थाई रूप से कुप्रभाव पड़ता है। साथ ही साथ भी सामान्य रूप से नहीं चल पाती है। रक्त संचालन, पाचन–क्रिया, ग्रन्थीय तथा जनन अंगों आदि दोषपूर्ण हो जाते हैं।
2. अति संवेगात्मकता की स्थिति में बालकों के व्यवहार प्रतिमान संगठित नहीं रह पाते है। इस अवस्था में बालक के खेल पर भी प्रभाव पड़ता है। उनका खेल में मन नहीं लगता है उनका खेल संरचनात्मकता भी नहीं होता है।
3. अति संवेगात्मक की अवस्था में बालकों में भाषा सम्बन्धी विचार भी उत्पन्न हो जाते हैं।
4. एक अध्ययन(सी0एल0एफ0ए0डब्लू0, 1962) में यह देखा गया है कि बालकों के स्कूल का कार्य भी अति संवेगात्मकता की स्थिति में प्रभावित होता है। बालकों को इस अवस्था में पढ़ने और लिखने सम्बन्धी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अधिक चिन्ता की अवस्था में त्रुटियाँ अधिक होती हैं।
5. कष्टदायक संवेग जब बालक में अधिक मात्रा में होते हैं तब बालक के व्यवहार को उसके मनोवैज्ञानिक वातावरण के लोग पसन्द नहीं करते हैं।

संवेगों का नियन्त्रण– प्रत्येक सामाजिक समूह बालकों से यह अपेक्षा करता है कि वह संवेगों पर नियंत्रण करना सीखेंगे। सम्भवतः इसी कारण बालकों को संवेगों को उचित दिशा में नियंत्रण करना आवश्यक है। संवेगों को नियंत्रित करने के कुछ लोकप्रिय और प्रमुख प्रकार निम्न प्रकार से हैं–

1. **शमन–** यह एक प्रकार की मानसिक मनोरचना है जिसके द्वारा व्यक्ति अप्रिय, दुखद और कष्टकारी घटनाओं, विचारों इच्छाओं और प्रेरणाओं आदि को चेतना से जानबूझ कर निकाल देता है। यदि सुबह–सुबह दूध वाले से झड़प में बहुत क्रोध आया, या बुरा लगा तो इस बात को दिमाग से यह कहकर निकाल दिया जो हुआ सो हुआ, दूध वाला ही बेवकूफ है इस प्रकार का विचार करके किसी अन्य कार्य में जुट गए।

2. **संवेगात्मक शक्ति को समाज द्वारा स्वीकृत ढंग से व्यक्त करना–** इस ढंग को मार्गान्तीकरण भी कह सकते हैं। इसमें बालक को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है। भय संवेग को इस प्रकार मार्गान्तरित किया जा सकता है कि बालक बुरे कार्यों को करने से डरने लग जाए।

3. **अध्यवसाय**– बालकों को संवेगों में नियंत्रित करने का ढंग यह है कि बालकों में संवेगों के उत्पन्न होने वाले और व्यक्त करने का समय ही न दिया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि बालकों को पढ़ने लिखने या किसी अन्य लाभदायक काम में व्यक्त रखा जाए।

4. **विस्थापन**– यह वह मनोरचना है जिसमें किसी वस्तु या विचार सम्बन्धित संवेग किसी अन्य वस्तु या विचार में स्थानान्तरित हो जाता है। उदाहरण के लिए एक बन्ध्या स्त्री दूसरे बच्चे से प्रेम करें या कोई अपनी स्त्री से क्रोधित हो। परन्तु अपनी स्त्री पर क्रोध व्यक्त न करके अपने कुत्ते या किसी अन्य पर क्रोध व्यक्त करें।

5. **संवेगात्मक रेचन**– रेचन का अर्थ है कि "शमित संवेगों को मुक्त करना।" संवेगात्मक रेचन के दो प्रकार है –

6. **शारीरिक रेचन**– शारीरिक रेचन का अर्थ है संवेगों के कारण उत्पन्न शारीरिक शक्ति का व्यय होना। बालकों में संवेगों के कारण उत्पन्न शारीरिक शक्ति का व्यय मुख्यतः तीन प्रकार से होता है। जैसे विभिन्न खेलों द्वारा (दौड़ना, कूदना, तैरना आदि)।

7. **मानसिक रेचन**– इसमें बालक संवेगों द्वारा उत्पन्न शक्ति का व्यय उन परिस्थितियों और व्यक्तियों के प्रति अपनी अभिवृत्तियों को बदल कर करता है जिनके कारण संवेग उत्पन्न हुए हैं। मानसिक रेचन के लिए संवेगात्मक सहनशीलता आवश्यक है। मानसिक रेचन बालक उस समय उपयोग में लाता है। जब बालक में मानसिक योग्याताओं का विकास पर्याप्त मात्रा में हो जाता है तो विशेष रूप से कल्पना का विकास हो जाता है।

संदर्भ

1. हरलॉक, ऐलिजाबेथ(1978) बाल विकास, मैक्ग्रॉ हिल एजुकेशन।
2. हरलॉक, ऐलिजाबेथ(1960) एडोलसेन्ट डेवेलपमेंट, मैक्ग्रॉ हिल सिरीज।
3. बर्क, लौरा ई0(2013) बाल विकास, पियरसन।
4. श्रीवास्तव, डी0 एन0(1992) व्यवहारिक मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिशर्स।